वैदिक व्याख्यान माला - आठवाँ व्याख्यान

सप्त व्याहृति

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम', किल्ला पारडी, जि. सूरत

मूल्य छः आने

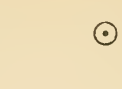

गुप्त संकेतके शब्द

कोई बडा कार्य करना हो, युद्धका समय उपस्थित हुआ हो, अथवा कुछ ऐसे विशेष प्रसंग प्राप्त हुए हों, जहां स्पष्ट बोलना योग्य न समझा जाता है, उस प्रसंगमें गुप्त संकेतके शब्द प्रयुक्त होते हैं। वैसे ये सात गुप्त संकेत पद हैं जो "**भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं**" ये हैं। वैदिक वाङ्मयमें इनका महत्त्व बडा है। यहांतक कि इनको सब वेदोंका सार माना है। यह महत्त्व इन शब्दोंमें कैसा है इसका विवेचन इस व्याख्यानमें किया है। आशा है कि पाठकोंको यह रुचिकर प्रतीत होगा।

आनंदाश्रम
किल्ला पारडी जि. सूरत

लेखक
श्री. दा. सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल

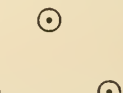

ॐ

सप्त व्याहृति

गुप्तसंकेतके सात शब्द

मनुष्यको सावध और दक्ष रखनेके लिये संकेतके गुप्त शब्द अथवा वाक्य दिये जाते हैं, जिनको स्मरण करके मनुष्य दक्ष रहता है और अपना कर्तव्यपालन करनेमें प्रमाद नहीं करता। युद्धके समय "यह मनुष्य अपने पक्षका निश्चयसे है," यह जाननेके लिये 'संकेतके शब्द' देनेकी परिपाटी है। प्रायः सर्वत्र यह पद्धति है और युद्ध के समय संकेत शब्दसे ही स्वपक्ष-परपक्षका मनुष्य पहचाना जाता है।

परदेशमें जानेके समय घरके तथा समीपके संबंधी अपना स्मरण रहे इसलिये कुछ पदार्थ अथवा संकेतके शब्द अंकित किया वस्त्र उसको देते हैं। जिसको देखनेसे उस प्रवासीको उस मित्रका अथवा उसके संकेतके कार्यका स्मरण होता है और प्रमाद न करता हुआ वह सूचित इष्ट कार्य करता है।

इस तरह मनुष्यके व्यवहारमें संकेतके शब्दोंका बड़ा महत्त्व रहता है। नामजप, ईश्वरके नामोंका स्मरण भी इसी तरह मनुष्योंको अपने कर्तव्योंका स्मरण करा देता है। यद्यपि आज कल जो लोग नामजप करते हैं, वे उस नामसे सूचित होनेवाला बोध लेनेका यत्न भी नहीं करते, तथापि जो नाम जपनेके लिये लिया जाता है, वह कुछ न कुछ संदेश देता ही है। जैसा देखिये—

१ गोपाल - गोपालनका संदेश देता है,

२ राम - जनताको आनन्द देनेका संदेश देता है,

३ नारायण - लोगोंके पास जाकर उनका सुखदुःख देखनेका और उनके दुःख दूर करनेके लिये अपना कर्तव्य करनेका उपदेश देता है,

४ गोविंद - गो नाम इन्द्रियोंको स्वाधीन रखनेका आदेश देता है,

५ पुरुषोत्तम - पुरुषोंमें अत्यंत श्रेष्ठ पुरुष बननेका प्रयत्न करनेकी सूचना देता है।

इस तरह नाम जप मानवी उन्नतिका -वैयक्तिक, सामाजिक, और राष्ट्रीय - कार्यक्रम बताता है। इस तरह ये ईश्वरके नाम मानवी उन्नतिका परिपूर्ण कार्यक्रम मनुष्यको बताते हैं, मानवी उन्नतिके अनुष्ठानका संकेत करते हैं, मनुष्यको दक्षतासे अपना कर्तव्य करनेकी सूचना देते हैं। इस समय नामजप करनेवाले मनुष्य इस सूचनाकी ओर ध्यान नहीं देते, यह इनका दोष है। यदि ध्यान देंगे तो ये ईश्वरके नाम मनुष्यका तारण करेंगे, इसमें संदेह नहीं है। साधकोंको नामसे सूचित होनेवाला कार्यक्रम तत्परतासे अनुष्ठान करनेके लिये तैयार रहना चाहिये।

इस तरह वैदिक धर्म 'संकेतमय धर्म' है। यज्ञोपवीतके तीन धागे, प्रत्येक धागेमें तीन सूत्र, ओंकारके तीन अक्षर, गायत्री मंत्रके तीन पाद और २४ अक्षर, इस तरह सैकड़ों गुप्तसंकेत हैं। ये सब जानने चाहिये और इनका अनुष्ठान करना चाहिये। आज इस लेखमें 'सात व्याहृतियों' का विचार करना है और देखना है कि ये किस तरह मानवी उन्नतिका संकेत करते हैं और किस अनुष्ठानकी सूचना देते हैं।

'व्याहृति' का अर्थ

'व्याहृति' पद 'वि+आ-हृ' धातुसे बना है। व्याहृ (वि+आ+हृ) = धातुका अर्थ 'बोलना, कहना, घोषणा करना, पुकार करके कहना, गुप्तसंकेतकी बात सूचित करना, स्पष्टीकरण करना, प्रश्नका उत्तर देना, सम्मति देना' ऐसा होता है। इस अर्थ को देखनेसे 'व्याहृति' का अर्थ - 'शब्द, कथन, भाषण, संकेतका भाषण, घोषणा, गुप्त संकेतका शब्द, गूढ अर्थका शब्द, गुप्तभावकी सूचना देनेवाला शब्द' ऐसा होता है।

ये व्याहृतिके शब्द सात हैं। जो ये हैं– 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं'। सात व्याहृतियां ये हैं। इनमें गुप्त संकेतका अर्थ भरा है। ये सात संकेतके पद मनुष्यको दक्ष और सावधान बननेकी सूचना देते हैं।

तीन महाव्याहृतियाँ

इन सात व्याहृतियोंमें 'तीन महाव्याहृतियाँ' हैं, उनके नाम 'भूः, भुवः, स्वः' हैं, इनसे पृथक् शेष चार व्याहृतियाँ हैं। इनका विवरण अब देखिये। इनमेंसे एक एकका भाव अब देखिये—

भूः

'भू सत्तायां' इस धातुसे 'भूः' की उत्पत्ति है, इसलिये इसका अर्थ 'सत्ता, अस्तित्व, होना, अपनी विद्यमानता' यह है। अपना 'अस्तित्व' रखनेके लिये प्रथम प्रयत्न होना चाहिये, यह सूचना इस 'भूः' से मिलती है। 'भूः' के अर्थ अब देखिये—

'भूः'– १ होना बनना; २ जन्म लेना, उत्पन्न करना और उत्पन्न होना; ३ उद्भव होना, उत्पत्ति होना; ४ (जीवित) रहना, होना, अस्तित्वमें आना; ५ (प्राणयुक्त) होना, (श्वास) लेते रहना; ६ रहना; ७ काममें आना; ८ (शक्य) होना; ९ (संचालक) होना; १० (सहायक) होना; ११ व्यवहार करना; १२ (अभ्युदय युक्त) होना, (यशस्वी) होना; इत्यादि अर्थ इस धातुके होते हैं, इस लिये इस 'भूः' पदके भी येही यौगिक अर्थ हैं। इतने अर्थोंमें इस 'भू' धातुका तथा 'भूः' पद का भाषामें व्यवहार होता है।

ये अर्थ वेदमंत्रोंमें भी इस धातुके हम देख सकते हैं अर्थात् वेदमंत्रोंमें इन अर्थोंके सूचक पद भी प्रयुक्त हुए हैं। देखिये—

१ मा पणिर्भूः। ऋ० १।३३।३
२ ऋष्वयीरस्य बृहतः पतिर्भूः। १।५२।१३
३ क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः। ऋ. १।९१।२
दक्षैः सुदक्षः ,,
४ त्वं त्राता... वृधे भूः। १।१७८।५
५ मनवे शास्यो भूः। १।१८२।७
६ त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः। ६।१।५
७ त्वं दशस्यावृको वृधो भूः। ६।१५।३
८ त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूः। ६।२०।११
९ सखा विश्वायुरविता वृधे भूः। ६।३३।४
१० मंहना दर्शता भूः। ६।६४।५
११ शिवो भूः। ७।१९।१०
१२ अभि ऋतवेन्द्र भूः। ७।२१।६
१३ माकिर्देवानामप भूः। १०।११।९
१४ प्रभूः जयन्तं। १०।४६।५
१५ भूर्जज्ञाः। १०।७२।४
१६ आतो भूः। १०।१४९।२

ऋग्वेदके इतने मंत्रोंमें 'भूः' का प्रयोग है। वैसे तो भू धातुके प्रयोग सहस्रों मंत्रोंमें हैं, पर 'भूः' ऐसा शब्द-प्रयोग इन मंत्रोंमें है। अब इस भूः पदके सहचारी पदोंका संबंध देखकर अर्थ देखिये. (१) तू कृपण न बन, (२) तू इस संपूर्ण विश्वका अधिपति हो, (३) तू अपने शुभ कर्मोंसे कर्तृत्ववान् और बलोंसे बलवान् हुआ है, (४) तू हमारा संरक्षक और उत्कर्ष करनेवाला है, (५) तू मानवोंके लिये सुशिक्षण देता है, (६) तू सबका तारक और उत्साह बढानेवाला है; (७) तू बलका संवर्धक है, (८) तू पुराणपुरुष है, वैभव बढानेवाला है, (९) तू सबका मित्र, संरक्षक, पूर्णायु और उत्कर्ष करनेवाला है, (१०) तू धन देनेवाला और देखनेमें मनोहर है, (११) तू कल्याण करनेवाला है, (१२) तू शत्रुका पराभव करता है, (१३) यहांसे देव दूर न हों ऐसा कर, (१४) तू विजयी और सब पर प्रभाव डालनेवाला हो, (१५) भूमि उत्पन्न हो गई (१६) इससे भू उत्पन्न हुई है।

इन मंत्रोंमें केवल एक दो मंत्रोंमें ही 'भूः' का अर्थ पृथ्वी है और अन्य मंत्रोंमें 'भूः' पद क्रियावाचक है। भूमि भी हम सबके अस्तित्वका आधार है और अन्य मंत्रोंमें जो अस्तित्ववाचक 'भूः' (है) पद है, वह अस्तित्व-दर्शक तो है, पर वह सर्वत्र उत्कर्ष, वैभव, वृद्धि, अभ्युदय, तारण, बल, आधिपत्य आदि श्रेष्ठ शुभगुणोंका साहचर्य करता है। यह केवल अस्तित्व मात्र नहीं है, हीन दर्जेका अस्तित्व नहीं है, गिरनेवाला अस्तित्व नहीं, अधःपतनकी सूचना इनमें नहीं है। मैं कः पदार्थ हूं, मैं तुछ हीन दीन हूं, मै क्षणभंगुर हूं, मैं नाशवान हूं, ऐसा भाव यहां नहीं

है। प्रत्युत यहां का अस्तित्व तारक, दुःखनाशक, उद्धारक, धनधान्यबलका संवर्धक, यश बढानेवाला है, प्रभुत्व स्थापित करनेवाला विजयी अस्तित्व है। वेद हीन-दीनताका भाव बोलता ही नहीं, यह भाव तो शत्रुके पास रहे। हमारे पास 'अदीन अस्तित्व' रहना चाहिये।

अपना सामर्थ्यशाली अस्तित्व

'भूः' का अर्थ 'अस्तित्व, स्थिति, रहना, होना' ऐसा है, पर यह सामर्थ्यवान, विजयी, प्रतापी, यशस्वी, प्रभुत्वस्थापक अस्तित्व है यह ध्यानमें धरने योग्य है। 'अस्तित्व' ही सब व्यवहारका आधार है। हमें सबसे प्रथम अपने अस्तित्वको सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि कोई शत्रु हमारे अस्तित्व पर ही आक्रमण करेगा, तो उसको नष्टभ्रष्ट करना हमारा आवश्यक कर्तव्य ही होगा। हमारे सब प्रकारके व्यवहारोंका मूलाधार हमारा अस्तित्व है। यदि हमारा अस्तित्व ही नष्ट हुआ, तो बाकी सभी बातें हमारे लिये व्यर्थ हो जांयगी। इसलिये इन सात गुप्त संकेतके शब्दोंमें प्रथम 'भूः' अपना अस्तित्व चिरस्थायी रखो ऐसा आदेश प्रत्येक वैदिकधर्मीको दे रहा है।

पाठक विचार करके देखें कि अपना अस्तित्व न रहा तो फिर क्या है? सर्वशून्य ही हो जायगा। वैदिक धर्म 'शून्यवाद' का प्रतिपादन नहीं करता, वह 'सत्तावाद' अथवा 'प्रभुत्ववाद' का प्रतिपादन करता है।

इस तरह 'भूः' का विचार करके हमने देखा कि हमारा अस्तित्व स्थायी रखनेका संदेश यह पद दे रहा है। तथा पूर्वोक्त वेदके मंत्र अस्तित्व के साथ रहनेवाले सहचारी पदोंसे यह बता रहे हैं कि, वह 'हमारा अस्तित्व ऐश्वर्य, प्रभुत्व तथा वैभवसे अलंकृत होना चाहिये।' मनुष्यका प्रयत्न अपना अस्तित्व वैभवयुक्त करनेके लिये होना चाहिये, यह भाव इस विवरणका है। 'भूः' से यह अनुष्ठान मनुष्यके लिये सूचित होता है। और भी देखिये-

भूः हीयं (पृथिवी) श. ब्रा. ७।४।२।७
स (प्रजापतिः) भूरित्येव ऋग्वेदस्य रसमादत्त।
जै० उ० १।१।३
भूरिति ऋग्भ्योऽक्षरत्। प० १।५
स भूरिति व्याहरत्। तै० २।२।४।२
*
भूरिति वा अयं लोकः। श. ८।१।४।१२
भूरिति वै प्रजापतिः। आत्मानमजनयत्
श. ब्रा. २।१।४।१३

'भूः' यह पृथिवी है। भूः यह ऋग्वेदका सार है, वह ऋग्वेदसे निकल कर बाहर आया है। भूः यह प्रजाका पालन करनेवाला है। वह अपने आपको उत्पन्न करता है और प्रजापतिके स्थानमें स्थापन करता है।

'भूः' ऋग्वेदसे किस तरह और किन् मन्त्रोंसे प्रकट हुआ है यह ऊपर बताया है। इस 'भूः' के विषयमें निम्नलिखित वचन देखिये—

भूरिति ऋग्भ्यः। छां० उ० ४।१७।२
भूः स्वाहा। छां० ४।१७।४; बृ०. ६।३।३
भूरिति वा अयं लोकः। तै० १।५।१
भूरिति वा अग्निः। तै० १।५।२
भूरिति वा ऋचः। तै० १।५।२
भूरिति वै प्राणः। तै० १।५।३
भूः पादाः। मैत्री ६।५
भूस्ते आदिः। शिर० ३
पुरुषस्तस्य भूरिति शिरः। बृ० ५।५।३

'भूः यह ऋग्वेदमन्त्रोंका सार है, भूः पृथिवीका नाम है। भूः का अर्थ अग्नि है। भूः का अर्थ ऋग्वेदके मंत्र है। भूः का अर्थ प्राण है। भूः सबका आधाररूप पांव है। भूः सबका आदि है। आत्मारूपी पुरुषका सिर भूः है। भूः का उच्चारण करके स्वाहा किया जाता है।' यह भूः के विषयमें उपनिषदोंमें कहा है। इससे भूः का महत्त्व समझमें आ सकता है। ऋग्वेदके मंत्रोंका सार भूः है। अपने अस्तित्वके लिये जो करना आवश्यक है वह शुभ कर्म करना चाहिये, ऐसा भूः व्याहृति द्वारा सूचित होता है। तथा और देखो—

भूरन्नं अग्नये पृथिव्यै स्वाहा। महाना. ७।१
भूश्च नारायणः। ना. उ. ता. १।५

'भूः' का अर्थ अन्न है और नारायण, अर्थात् परात्पर पुरुष ऐसा भी उसका अर्थ है, भू से अन्नका बोध होता है जो सबके जीवनके लिये मुख्य वस्तु है। वैसा ही परमेश्वर भी इस भू का अर्थ है जो सबका आधार है और

स्वयंसिद्ध है। ईश्वर ही स्वतःसिद्ध अस्तित्ववान् है जिसके अस्तित्वसे सब विश्व अस्तित्ववान् हुआ है।

इस तरह 'भूः' का अर्थ 'अस्तित्व' है और शेष इसके अर्थ अस्तित्वके सहायक होनेवाले हैं। अपना अस्तित्व रखनेके लिये मनुष्योंको प्रयत्न करना चाहिये यह इसका तात्पर्य है। अब दूसरी व्याहृति 'भुवः' है।

भुवः

दूसरी व्याहृति 'भुवः' है। 'भुवः' का अर्थ—'भु-वर्' भु नाम पृथ्वीके ऊपर श्रेष्ठ होना है, जो पृथ्वी पर अपना अस्तित्व है वह अधिक श्रेष्ठ बनाना। अपना जीवन श्रेष्ठ बनाना। अपनी वरिष्ठता प्रस्थापित करना। अपनेमें जो दीन हीनताका भाव है, उसको दूर करके अपने अन्दर श्रेष्ठत्व लाना और उसको बढाना। 'भुवः' का अर्थ 'अग्नि तथा पृथ्वी' है। अग्नि ज्ञानका देव है। अग्नि ज्ञान देता है, प्रकाश देता है, मार्ग दर्शाता है, अन्तिम सिद्धितक पहुंचाता है। ये गुण अग्निके अन्दर हैं। प्रकाश दर्शानेका अर्थही मार्गदर्शन करना है। ये सब ज्ञान के गुण हैं। ज्ञानी अपने ज्ञानसे लोगोंका मार्गदर्शन करता है, लोगोंको सन्मार्गसे चलाता है, अन्तिम सिद्धितक पहुंचाता है। अन्धेरी रात्रीमें अग्नि, अथवा दीप जो मार्ग-दर्शन करता है, वह ज्ञानका कार्य है। वही 'भुवः' पदसे यहां सूचित किया है। 'भुव् अवकल्पने' यह धातु है। अवकल्पनका अर्थ ज्ञान और ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली कल्पना है। मनुष्यको यही ज्ञान उठाता है और तारता है। इस लिये अस्तित्वके पश्चात् ज्ञान प्राप्त करनेकी सूचना यहां दी है।

केवल "पशुसमान अस्तित्व" नहीं चाहिये, परंतु अस्तित्वमें यशपूर्ण वैभव प्राप्त करनेके लिये ज्ञान भी चाहिये, यह भाव यहां प्रकट हुआ है। 'भुवः' के विषयमें उपनिषदोंमें क्या कहा है, सो अब देखिये—

भुव इति यजुर्भ्यः। छां० ४।१७।३
भुव इति बाहू। बृ० ५।५।३
भुव इत्यन्तरिक्षम्।
भुव इति वायुः।
भुव इति सामानि। भुव इत्यपानः। तै० १।५।१
नाभिर्भुवः। मैत्री० ६।५
भुवोऽग्नं वायवे। महा. ना. ७।२
मध्यं भुवः। शिरस् २
यो वै रुद्रः। यज्ञ भुवः। शिरस् २
भुवो लोकस्तु जानुनोः। नाद ३

(भुवः) व्याहृतिका ऐसा स्पष्टीकरण उपनिषदोंमें मिलता है। इसका भाव यह है- "भुवः यह यजुर्वेदका सार है, यजुर्वेदके मंत्रोंसे भुवः व्याहृती उत्पन्न हुई है। भुवः ये बाहू हैं, जैसे शरीरमें बाहू कार्य करते हैं वैसी भुवः यह व्याहृती कर्मशक्ति की सूचक है। पृथ्वीके ऊपर जैसा अन्तरिक्ष है वैसी भू व्याहृती पर भुवः व्याहृतीका उच्च स्थान है। भुवः यह प्राण है, प्राणके समान इसका महत्त्व है। शरीरमें प्राणका जैसा महत्त्व है वैसा भुवः का जीवनमें महत्त्व है। भुवः यह सामगानकी सूचक व्याहृती है। जिस तरह मंत्रकी शोभा सामगानके आलापोंसे बढती है उस तरह भू नाम अस्तित्वकी-जीवनकी शोभा भुवः नाम ज्ञानमय कर्तृत्वसे बढती है। भुवः यह जीवनका महत्त्व है। भुवः यह जीवन व्यवहारका मध्य है, जिस तरह शरीरके मध्यमें नाभी होती है। भुवः से अन्नका बोध होता है, जैसा जीवनके लिये अन्न सहायक है, वैसा ही भुवः व्याहृतिसे बोधित होनेवाला ज्ञानपूर्वक कर्म मानवी अस्तित्वकी सुंदरता बढानेकी सहायता करता है। जो रुद्र है, जो शत्रुका संहार करनेवाला देव है, वही भुवः की शक्ति है। ज्ञानपूर्वक कर्म करनेसे ही शत्रु दूर हो सकते हैं। इस तरह भुवः का भाव उपनिषदोंमें वर्णन किया है। यह अत्यंत मननीय है। यह 'भुवः' व्याहृति यजुर्वेदके मंत्रोंसे प्रकट हुई है ऐसा 'भुव इति यजुर्भ्यः'। छां० ४।१७।३ में कहा है। इसके सूचक यजुर्वेदके मंत्र अब देखिये—

अयं पुरो भुवः, तस्य प्राणो भौवायनो,
वसन्तः प्राणायनो, गायत्री वासन्ती।
वा० यजु० १३।५४

'यह सामने भुवः है, उससे प्राण उत्पन्न हुआ, प्राणसे वसन्त हुआ और वसन्तसे गायत्री छन्द उत्पन्न हुआ है।' तथा—

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः। दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥

वा० य० १३।१५; १५।२३

'तू यज्ञका और रजोलोकका नेता होता है जिस समय कल्याण करनेवाली ज्वालाओंसे तू युक्त होता है, द्युलोकमें तू सूर्यका धारण करता है, यज्ञमें हव्यका वहन करता है।'

प्राण शक्ति, वसन्त ऋतुका सौंदर्य और गायत्री मंत्रका महत्त्व यह सब जो 'पुरो भुवः' जो अग्रगामी रहता है, जो नेता होता है उसका वैभव है। यह अन्तरिक्ष लोकका तथा यज्ञका नेता है। रजोलोक ही भुवर्लोक है। यह यज्ञस्थान और सब मानवी हलचलका स्थान है। सब प्रकारके प्रयत्नोंका प्रतीक यज्ञ है। इसलिये इससे पूर्व भुवः का आशय 'ज्ञानपूर्वक किया कर्म' किया है। भुवः का अर्थ यह है।

मनुष्य अपना (भूः) अस्तित्व स्थायीरूपसे रखनेका प्रयत्न करे परंतु उसको उसके साथ साथ (भुवः) ज्ञानपूर्वक कर्म अवश्यमेव करना चाहिये। वस्तुतः 'भू' धातुसे ही 'भूः भुवः' ये दोनों पद बने हैं, इसलिये इन दोनोंका भाव 'वैभवयुक्त होकर रहना' है। यह ज्ञानपूर्वक किये कर्मोंसे ही हो सकता है, किसी दूसरे यत्नसे नहीं होगा। अपना अस्तित्व स्थायीभावसे टिकानेका उपदेश भू व्याहृतिसे बोधित होता है और उस अपने स्थायी अस्तित्वको ज्ञानपूर्वक किये शुभ कर्मोंसे आनन्दमय बनानेका साध्य द्वितीय 'भुवः' इस व्याहृतीसे सूचित होता है। इस तरह हम अपना अस्तित्व स्थायी रहनेका प्रयत्न करेंगे और उस हमारे जीवनको आनन्दप्रसन्न करनेका भी प्रयत्न साथ साथ करेंगे।

यहां एक बडी शंका उपस्थित होती है, वह यह कि किसीका भी अस्तित्व (सत्ता) स्थायी नहीं होती। यहां इस भूमिपर जो उत्पन्न होते हैं वे मरते हैं, इसलिये कहा है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः
ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ भ० गीता. २

'जो जन्मा है उसका मृत्यु निश्चित है और जो मरा है उसका जन्म भी निश्चित है।' यदि यह सत्य है तो इसीसे अपना अस्तित्व टिकानेकी सभावना विदित हो सकती है। क्योंकि इस वचनमें कहा है कि जो मरता है उसको जन्म निश्चित है। जैसा जागता है उसको सोना आवश्यक है और जो सोता है उसको जागना आवश्यक है। यहां जागना और सोना जीवन मरणके सदृश समझिये। कोई जागनेवाला निद्रामें अपना नाश हुआ ऐसा नहीं मानता और वास्तविक रीतिसे निद्रामें नाश होता भी नहीं। इसी तरह जीवनके पश्चात् मृत्यु हुआ तो उसके पश्चात् यदि जन्म होता है, तो मृत्युके समय भी कुछ विलक्षण अवस्थामें जीवन रहना ही चाहिये, जिसका पुनः जन्म होता है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण ये तीन शरीर मनुष्यके हैं। इनमें स्थूल शरीरका नाश होनेपर सूक्ष्म और कारण देह रहते हैं पश्चात् सूक्ष्म देह भी विलीन होनेपर कारण देह रहता है। अर्थात् कारण देह जैसा जीवनमें वैसा ही मृत्युमें रहता है। स्थूल देह अन्नमय है, सूक्ष्मदेह वासनादेह है और कारण देह मनोमय है, इसके पश्चात् भी विज्ञानमय देह है जो महाकारण संज्ञासे प्रसिद्ध है।

भूः —स्थूल— अन्नमय
भुवः—सूक्ष्म—प्राणमय } मृत्युक्षेत्र

स्वः— कारण—मनोमय
महाकारण—विज्ञानमय बुद्धि } अमर क्षेत्र

यहां स्पष्ट हुआ कि स्थूल और सूक्ष्म देह बनते और बिगडते हैं और दोनों कारण देह स्थायी रहते हैं अतः यदि हम अपने मन और बुद्धिको सामर्थ्यवान करेंगे तो इससे हम अपने अमरत्वका अनुभव कर सकेंगे। संक्षेपसे स्थूल शरीरका मृत्यु होनेपर भी अपने अमर रहनेका अनुभव इस तरह किया जा सकता है। यही साधन भुवः व्याहृतिने सूचित किया है। ज्ञानपूर्वक कर्म स्थूल-सूक्ष्म-कारण देहोंको पवित्र करता है। और स्थूलके मरनेपर सूक्ष्म तथा कारण देहोंपर रहनेवाला जीव अपने आपको स्थायी जीवनके साथ अनुभव करता है और मृत्युसे अपने अस्तित्वमें कुछ भी बिगाड नहीं हुआ, पर मृत्युसे अधिक कार्यक्षम शरीर प्राप्त हुआ ऐसा वह मानता है। यह उसके आनंदका विषय है। कोट उतार कर रखा, तो मेरे अस्तित्वमें कुछ भी हानि नहीं हुई। एक कोट गया तो मैं दूसरा नया कोट धारण

करूंगा। इसमें रोनेका कोई कारण नहीं है। इस तरह मृत्यु का भय दूर हो जाता है और यह ज्ञानी मानव अपने स्थायी जीवनमें, स्थायी अस्तित्वमें आनन्दप्रसन्न रहता है।

इस प्रकार अपने स्थायी अस्तित्वका अनुभव करनेका अनुष्ठान करनेका विषय अन्य लेखमें प्रतिपादन किया जायगा। यहां इतना ही स्मरण रखना चाहिये कि मनुष्य के लिये स्थायी अस्तित्व ज्ञानविज्ञानसे है और मृत्यु स्थूल शरीरके पीछे लगा है। इतना स्मरण रखनेके पश्चात् हम तीसरी 'स्वः' इस व्याहृतिको अपने विचारके लिये लेते हैं।

स्वः = स्वर्

'स्वः' ही 'स्वर्' है। रकारका विसर्ग होता है। 'स्वर्' में 'स्व+र्' अथवा 'स्व+र' ये दो विभाग हैं। 'स्वयं राजते इति स्वरः' जो स्वयं रहता है, प्रकाशता है, प्रदीप्त रहता है, जो अपनी निज शक्तिसे रहता है, अपने रहनेके लिये तथा अपना प्रकाश फैलानेके लिये जिसको किसी दूसरेकी आवश्यकता नहीं है, जो अपनी निज शक्तिसे प्रकाशेगा और अपनी ही निज शक्तिसे अपना प्रकाश फैलाकर विश्वको देगा और ऐसा करनेके लिये जिसको दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा नहीं वह 'स्वर, स्वर्, स्वः' है। भूः, भुवः, स्वः ये तीन व्याहृतियां हैं, भूः से अस्तित्व, भुवः से ज्ञानपूर्वक किया शुभ कर्म और स्वः से आत्मसामर्थ्यका प्रकाश करनेका भाव सूचित होता है। ये तीनों भाव परस्पर संबंधित हैं।

यदि मनुष्यका अस्तित्व न रहा, तो कुछ भी लाभ होनेकी संभावना नहीं। अस्तित्वको-मानवी जीवनको सफल बनानेके लिये ज्ञानपूर्वक कर्म करनेकी आवश्यकता है। इतना होनेपर भी मानवी जीवन कृतकृत्य हुआ ऐसा नहीं समझा जायगा। इसकी कृतकृत्यता होनेके लिये इसकी आत्मशक्तिका प्रकाश पूर्णतया चारों ओर फैलना चाहिये। चारों दिशाओंके मानवोंका आकर्षण इसकी ओर होना चाहिये। यह प्रकाशका केन्द्र बने और इसके प्रकाशसे मानव समाज प्रकाशित हो। ऐसा दिव्य प्रकाश यह देते। इसका नाम है 'स्व-र्' प्राप्ति। यह मानवकी कृतकृत्यता करनेवाली है।

अक्षरोंमें कुछ व्यंजन होते हैं और कई 'स्वर' होते हैं। स्वरोंका उच्चारण अखंड होता है। अ ऽ ऽ ऽ ऽ कितना भी करो, वह अखंडित रीतिसे होता ही रहेगा। अखण्ड प्रगतिका नाम 'स्व-र' है। यही 'स्व-र्' है, अखंड प्रकाश, अखंड प्रगति, अक्षय वैभव, अमरज्ञान इस स्वरमें है। यह प्राप्त होनेपर मनुष्य अपने आपको कृतकृत्य मानता है, अखंड आनंद उसको प्राप्त होता है। वह सदा आनंद प्रसन्न रहता है। वह प्रकाशक होता है, नया दिव्य संदेश वह देता है, इससे सब लोग दिव्य मार्ग जानते हैं और कृतकृत्य होते हैं। यह है इस 'स्वर्' का महत्त्व।

अब इसका वर्णन उपनिषदोंमें कैसा किया है वह देखिये। यहां यह ध्यानमें रखना चाहिये कि 'स्वः, स्वर्, सुवर' ये पद एक ही हैं, तथा 'स्वर्ग, सुवर्ग' ये भी एक ही हैं—

आकाशात्मानः स्वरीयुः
आकाशात्मा स्वरिति। कौ० उ० २।१४
स्वः प्रपद्येऽमुना। छां. उ. ३।१५।३
स्वरिति सामभ्यः। छां. ४।१७।३
स्वरिति प्रतिष्ठा। बृ. उ. ५।५।३;४
स्वस्ते दधामि। बृ. ६।४।२५
सुवरित्यसौ लोकः। तै. उ. १।५।१
सुवरित्यादित्यः।
सुवरिति यजूंषि। तै. १।५।२
सुवरिति व्यानः। तै. १।५।३
देवान् सुवर्यतः श्वे. २।३
स्वरिति अस्याः शिरः। मैत्री. ६।६
अन्तरिक्षमथो सुवः। महाना. १।९;५।७
द्यावापृथिव्योर्हिरण्मयं संश्रुतं सुवः स नः
सुवः संशिशाधि। महा. ५।९
सुवरग्नं। महा. ७।१
तपसा ऋषयः स्वरन्वविन्दन्। महा. २२।१
दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरगच्छन्। महा. २२।
स्वस्ते शीर्षं। शीरस् २
यस्मिल्लोके स्वर्हितम्। रामोत्त. ५
सन्धीयते सुवर्गेण लोकेन। तै. उ. १।३।४
सत्येन न सुवर्गाल्लोकाच्च्यवन्ते। महा. २१।२
साम सुवर्गो लोको बृहत्। अग्निहोत्रं सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिः। महा. २२।१
सुवर्गायाय शक्त्या। श्वे. उ. २२

स्वरिति स्वर्गो लोकः स सामवेदः । संध्यो. २०
स्वरित्यस्याः शिरः । मैत्रा. ६।६
स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति । कठ १।१२
स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः । अरुण. १

इस प्रकार 'स्वः' का वर्णन उपनिषदोंमें है। 'स्वः, स्वर्, सुवर, स्वर्ग, सुवर्ग' ये सब पद एक ही आशय बतानेवाले पद हैं। अब प्रथम इन वचनोंका भाव देखिये– 'आकाश जिसका रूप है जो ऐसा व्यापक आत्मा उसका वर्णन स्वः पदसे होता है। ज्ञानी लोग इसको प्राप्त करते हैं। इस ज्ञानपूर्वक कर्मसे मैं इस स्वर्को प्राप्त करता हूं। सामगानसे स्वर्की प्राप्ति होती है, सामगान स्वरोंसे ही होता है। स्वः यह सबका आधार है। भुवर् यह वह ऊपर दीखने वाला लोक है। जहां सूर्य है वह स्वर ही है। यजुर्वेद भी स्वर ही है। व्यान प्राणको स्वर् कहते हैं। देव स्वर्को प्राप्त होते हैं। गायत्रीका सिर स्वर् है। अन्न ही स्वर् है। द्यावापृथिवीमें जो सुयश है वह स्वर् ही है। ऋषियोंने तपसे स्वर्को प्राप्त किया था। ब्रह्मचारियोंने इन्द्रिय-दमनसे वही स्वर् प्राप्त किया। इस लोकमें स्वर् रखा गया है। ज्ञानसे स्वर्लोकको प्राप्त करते हैं। सत्यसे लोग स्वर्गसे गिरते नहीं। सामगान बडा स्वर्गलोक है और अग्निहोत्र उसकी ज्योति है। शक्तिसे स्वर्गलोक मिलता है। स्वर्लोकमें किसी तरहका भय नहीं होता। स्वर्गलोक तेजसे भरा है।'

यह वर्णन इस स्वर्का उपनिषदोंमें है। इससे इसकी श्रेष्ठताका पता लगता है। भूः और भुवः से यह उत्तर है, अधिक श्रेष्ठ है। सत्य और ज्ञानपूर्वक किये कर्मसे यह स्थान प्राप्त होता है। इन तीन व्याहृतियोंके इतने मननसे संक्षेपसे कहना हो तो निम्नलिखित तीन बोध मिलते हैं--

१ अपना अस्तित्व सुरक्षित रखनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

२ ज्ञान प्राप्त करके अभ्युदयके लिये उत्तम शुभ कर्म करने चाहिये,

३ और अपना प्रकाश फैलाकर अपने आत्मप्रकाशकी शक्तिसे सबको प्रकाशित तथा आनन्द पूर्ण करना चाहिये।

ये कर्तव्य जैसे वैयक्तिक हैं वैसे ही सार्वजनिक और राष्ट्रीय भी हैं।

१ अपना राष्ट्रीय अस्तित्व सुरक्षित रहनेके लिये जो कर्तव्य करने आवश्यक हैं वे करने चाहिये,

२ राष्ट्रभरमें यथेच्छ ज्ञानप्रचार करके अपने राष्ट्रीय अभ्युदयके लिये जो शुभ कर्म करनेकी आवश्यकता हो वे सब कर्तव्य करने चाहिये।

३ तथा अपने राष्ट्रका सर्वत्र प्रकाश फैले और सब देश अपने राष्ट्रके ज्ञानसे लाभ उठावे और सबको आनन्द प्रसन्न रहनेका मार्ग दीखे ऐसा करना चाहिये।

ये राष्ट्रीय बोध उन्ही तीनों व्याहृतियोंसे मिलते हैं। अब तीनों महाव्याहृतियोंका इकट्ठा विचार करना चाहिये -

तीन महाव्याहृतियाँ

'भूः भुवः स्वः' ये तीन महाव्याहृतियाँ कहलाती है; वेद तथा उपनिषदोंमें इन तीनोंको बडा महत्त्वका स्थान मिला है। इसलिये यहां संक्षेपसे इन तीनों महाव्याहृतियोंका विचार करते हैं। वेद मंत्रोंमें इनका उल्लेख आया है ऐसे मंत्र देखिये क्या कहते हैं--

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां
सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि, शंस्य पशून् मे पाहि
अथर्व पितुं मे पाहि। वा. य. ३।३७

'अस्तित्व—ज्ञान--आत्मप्रकाशके लिये यत्न हो। मैं उत्तम प्रजासे प्रजावाला हो जाऊं, उत्तम वीरोंसे वीर बनूं, उत्तम पोषणोंसे हृष्टपुष्ट बनूं। हे अनुयायियोंका हित करने वाले नेता! मेरी प्रजाका रक्षण कर, हे प्रशंसा योग्य नेता! मेरे पशुओंका रक्षण कर हे स्थायी रहनेवाले! मेरे अन्नका संरक्षण कर।' तीन व्याहृतियोंके द्वारा अस्तित्व-ज्ञान--आत्मप्रकाश होकर जो होता है वह इसमें दिया है। सुप्रजा होनी चाहिये, वह वीर संतति होना चाहिये, वह हृष्टपुष्ट बलिष्ठ होनी चाहिये, पर्याप्त अन्न अपने पास रहना चाहिये।

भूर्भुवः स्वः द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
वा. य. ३।५

"अस्तित्व--ज्ञान--आत्मप्रकाश हो। द्युलोकके समान विस्तृत और पृथिवीके समान श्रेष्ठ मेरा कार्य हो।"

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। वा. य. ३६।३

' अस्तित्व--ज्ञान और अपना प्रभाव सुस्थिर हो। मैं उस सर्व विश्वके प्रसविता परमात्मदेवकी श्रेष्ठ ज्योतीका ध्यान करता हूं, जिससे हम सबकी बुद्धियोंको शुभ प्रेरणा मिले।' इस तरह भूः भुवः स्वः इन तीन महाव्याहृतियोंके साथ वेदमंत्रों द्वारा कैसे विचार प्रकट हो रहे हैं उनका विचार कीजिये। अब उपनिषदोंमें इन महाव्याहृतियोंके विषयमें क्या कहा है सो देखिये—

भूर्भुवः स्वः स्वाहा। बृ. उ. ६।३।३
भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामि। बृ. ६।४।२५
भूर्भुवः स्वरोम्। मैत्री ६।३५
भूर्भुवः स्वरन्नम्। म. ना. ७।२
भूर्भुवः स्वर्ब्रह्म। म. ना. ८।१
भूरसि भुवोऽसि सुवरसि भूर्भूतये स्वाहा।
पार. ५।६
भूरिति भुवो लोकः, भुव इत्यन्तरिक्षलोकः स्वरिति स्वर्गलोकः। गायत्री २
भूरिति ऋग्भ्यः, भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः। छां ४।१७।३
भूर्भुवः स्वरित्येषास्य प्रजापतेः स्थविष्ठा तनूर्या लोकवती। मैत्रा. ६।६
भूर्भुवः स्वः ब्रह्म स्वयंभु। चिंयु. ६।१
भूर्भुवस्वरिमे लोकाश्चंद्रसूर्याग्निदेवताः।
योग. ६।५६
भूर्लोकः पादयोः भुवर्लोकस्तु जानुनि, सुवर्लोकः कटिप्रदेशे। ना. बिं. ३
भूस्त्वादिः, मध्यं भुवस्ते, स्वस्ते शीर्षं विश्वरूपोऽसि। चतुर्वे. ८

' भूः भुवः स्वः इससे जो बनता है वह मैं तेरे लिये समर्पण करता हूं। भूः भुवः स्वः ये तीनो ओंकार रूप है। भूः भुवः स्वः यह सब अन्न है। ये तीनों ब्रह्म हैं। ये तीनों तेरे रूप हैं। पृथ्वीका नाम भूः, अन्तरिक्षका नाम भुवः और स्वर्गलोकका नाम स्वः है। भूः ऋग्वेदसे, भुवः यजुर्वेदसे और स्वः सामवेदसे होते हैं। भूः भुवः स्वः यह प्रजापति परमात्माकी स्थूल तनु है, जिसमें सब लोक समाये हैं, भूः भुवः स्वः यह स्वयं स्वयंभु ब्रह्म ही है। अग्नि सूर्य चन्द्र ही ये तीन व्याहृतियोंसे सूचित होते हैं। भूः पाव, भुवः घुटने और स्वः कटिप्रदेश है अर्थात् यह परमात्माका विराट् देह है। भूः उसका आदि है, भुवः उसका मध्य है और स्वः उसका सिर है, इस तरह ये तीन व्याहृतियों द्वारा विश्वरूप परमात्माका वर्णन होता है।' यह उपनिषदोंका कथन अत्यंत मननीय है। इसका विचार संक्षेपसे करते हैं—

इन तीन महाव्याहृतियोंका विचार ऋषियोंने कितना किया था, वह इन वचनोंसे विदित हो सकता है। भूः से पृथिवी, भुवः से अन्तरिक्ष, और स्वःसे द्युलोकका बोध होनेसे ' भूर्भुवः स्वः ' से संपूर्ण विश्वका बोध होता है। पृथ्वी लेनेसे जल, अग्नि, वनस्पतियां आदि सब पदार्थ आगये, अन्तरिक्ष लेनेसे वायु, मेघ, विद्युत् आदि सब पदार्थ आगये, और द्युलोक लेनेसे सूर्य चन्द्र तारागण आदि सब आगये हैं। अर्थात् ' भूर्भुवः स्वः ' कहनेसे विश्वके अन्तर्गत सब पदार्थ आगये और कुछ बाकी रहा नहीं यह स्पष्ट है।

मनुष्यका अस्तित्व इन सब पदार्थोंपर अवलंबित है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वृक्षवनस्पति, वृष्टी, विद्युत, वायु, सूर्य चन्द्र नक्षत्र इन सब पदार्थोंकी शक्ति प्राप्त होनेसे ही मनुष्य जीवित रह सकता है और उसका अस्तित्व यहां टिक सकता है। जल न मिला, अग्निसूर्यकी उष्णता न मिली, वायु न मिला तो मनुष्यका रहना असंभव है। इस तरह ' भूर्भुवः स्वः ' के साथ इस तरह मनुष्यके अस्तित्वका संबंध है। मनुष्यका ज्ञान भी इन्ही पदार्थोंका ज्ञान है। कर्म भी इन्ही पदार्थोंके संबंधसे होनेवाली क्रिया है। तो मनुष्यने अपने अभ्युदयके लिये करने योग्य ज्ञानपूर्वक कर्म इन पदार्थोंके साथ होनेवाली क्रिया है। जो भी मनुष्य कर्म करता है वह कर्म इन पदार्थोंके साथ ही किया जाता है। इसी तरह मनुष्यका प्रकाश फैलना है वह भी इनकी सहायतासे ही फैलना है। इस रीतिसे देखा जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि भूर्भुवः स्वः से ही मनुष्य जीवित रहता, अभ्युदयार्थ यत्न करता और आत्मप्रकाश कर सकता है। अर्थात् मनुष्यका सर्वस्व ' भूर्भुवः स्वः ' के साथ संबंधित है। संपूर्ण विश्वरूप ही

परमेश्वरका रूप है, इसी कारण इन वचनोंमें कहा है कि प्रजापतिका यह स्थूल शरीर है। स्वयंभु ब्रह्म ही ये तीन व्याहृतियाँ है। नारायण भी यही है। इस सब वर्णनका तात्पर्य एक ही है।

इस तरह इन तीन महाव्याहृतियोंका विचार हुआ। मनुष्य व्यक्ति तथा मानवजातीका भूत भविष्य वर्तमान सबका सब इन तीन व्याहृतियोंसे संबंधित है। मनुष्य इन तीन व्याहृतियोंका त्याग करके जीवित भी नहीं रह सकता। मनुष्यका अस्तित्व, ज्ञान और उत्कर्ष इनकी अनुकूलता पर अवलंबित है। इसलिये मनुष्य इनकी अनुकूलता संपादन करके यहां रहे और अनुकूलतासे ही कृतकृत्य बने। अब अगली व्याहृतियोंका विचार करते हैं।

महः

'महः' चौथी व्याहृति है। इसका अर्थ—१ 'महोत्सव, उत्सवका समय; २ अर्पण, समर्पण, यज्ञ; ३ प्रकाश, तेज, ज्योति; ४ वैदिक मंत्र; स्तुतिके मंत्र, ५ आनंद, सुख, प्रसन्नता; ६ महत्त्व, बडापन, शक्ति, सामर्थ्य; ७ विपुलता; बहुतायतता; 'जल, उदक' ये अर्थ इस व्याहृतिके कोश में दिये हैं। महत्त्व, सामर्थ्य, बडापन ये अर्थ यहां मुख्य हैं और महत्त्वके सहायक अन्य अर्थ है।' भूः--भुवः--स्वः' के मुख्य अर्थ 'अस्तित्व-ज्ञानपूर्वक कर्म-आत्मप्रकाश' ये हमने इससे पूर्व निश्चित किये हैं, इनके साथ साथ 'सामर्थ्य, महत्ता' ये इसके अर्थ विचारमें लेने योग्य हैं।

महत्ता, महत्त्व, सामर्थ्य उसको प्राप्त होता है कि जिसका अस्तित्व सुरक्षित है, जो ज्ञानपूर्वक उत्तम कर्म करता है और जो अपने तेजसे प्रकाशता है। जिसका अस्तित्व डामाडोल हो रहा हो, जो ज्ञान विज्ञानहीन हो, जो किसी प्रकार शुभ कर्म करनेमें असमर्थ हो उसको महत्त्व कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

महत्ता, विशालता यह संकुचितताके विरुद्ध है। संकुचित भाव नहीं होना चाहिये। मन विशाल चाहिये। जो मनुष्य सब मनुष्योंको समदृष्टीसे देखता है उसका मन विशाल है और जो अपनी जातीतक ही देखता है वह संकुचित मनवाला है। मनुष्यको अपना मन विशाल करना चाहिये और संकुचित भाव को दूर करना चाहिये, तब महत्ता प्राप्त हो सकती है।

इस 'महः' के विषयमें उपनिषद् क्या कहते हैं सो अब देखिये--

महर्
ओं महः। महाना. १५।२
यो वै रुद्रः यच्च महः। शिरस् २
नाभिदेशे महर्जगत्। नाद. ४
स महर्लोकं जयति। नृ. पू. ५।६
महस्
एतदोजश्च महश्चेत्युपासीत। छां ३।१३।५
मह इति तद्ब्रह्म। तै. १।५।१
मह इत्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। तै. १।५।२
मह इति ब्रह्म। मह इत्यन्नम्। तै. १।५।३
मह इति ब्रह्मणि (प्रतितिष्ठति) तै. १।६।२
महः पुच्छं प्रतिष्ठा। तै. २।४।१
तन्महः इत्युपासीत महान्भवति। तै. ३।१०।३
पुरुषो वै रुद्रस्तन्महः। महाना. १३।२
ब्रह्मणे त्वा महसे महाना. २४।१

"ओंकारसे जिसका बोध होता है वह 'महः' है। जो रुद्र है वह 'महः' है। शरीरमें नाभीके पासका प्रदेश 'महः' कहलाता है। (इस अनुष्ठानसे) वह महर्लोकको जीतता है। जो ओज है उसकी 'महः' करके उपासना करो। जो महः है वही ब्रह्म है। वही आदित्य है, वही अन्न है। महः प्राप्त होनेसे ब्रह्म प्राप्त होनेके समान है। 'महः' में सबका आधार है। जो 'महः' की उपासना करता है वह बडा होता है। जो पुरुष ईश्वर है वही महः है। ब्रह्म ही महः है।" इस प्रकार उपनिषद कहते हैं।

यहां 'महः=महर्' और 'महः=महस्' ये दो पद दिये हैं। यद्यपि दोनोंका रूप 'महः' ऐसा एक ही होता है तथापि इन दोनोंमें भेद है। 'महर्' का अर्थ स्थानविशेष है और 'महस्' का अर्थ महत्त्वविशिष्टता है। एक गुण बताता है और दूसरा उच्च स्थानपर आरूढ होनेका भाव बताता है। तथापि इन दोनोंमें महत्त्वका भाव समान है। इसलिये पाठकोंसे निवेदन है कि वे इन दोनों पदोंकी पृथकताका अनुभव करते हुए दोनोंमें जो समान महत्त्वका भाव है वही ध्यानमें लें। वेद मंत्रोंमें यही 'महस्' पद है, वे मंत्र अब देखिये-

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एतेऽमध्यमासो
महसा विवावृधुः । सुजातासो जनुषा पृश्नि-
मातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥
ऋ० ५।५९।६

' ये वीर हैं, इनमें कोई श्रेष्ठ, कोई मध्यम और कोई कनिष्ठ ऐसे नहीं हैं । सब वीर समान हैं, ये अपना महत्त्व बढाते हैं और उस महत्त्वके साथ ये वीर बढते हैं । ये जन्मसे कुलीन हैं, भूमिको माता माननेवाले ये दिव्य वीर हैं ये हमारे साथ आकर रहें । ' यहां महत्त्वके साथ बढने-के लिये किन गुणोंकी आवश्यकता है यह दर्शाया है, सब-का समान होना, उच्चनीच मध्यम इस विषमभावका न होना, मातृभूमिको माता मानकर उसकी उन्नतिके लिये अपना जीवनदेनेको तैयार रहना आदि गुण जिन वीरोंमें होंगे वेही वीर महत्त्वके साथ बंध सकते हैं । इनके विरुद्ध गुणधर्म वाले अर्थात् जिनमें समताका बर्ताव नहीं है, उच्चनीचता है, जो मातृभूमिका हित नहीं करते, मिलकर कार्य नहीं करते उनको न महत्त्व प्राप्त होता है और नाही वे महत्त्वके कारण बढ सकते हैं । वैसे ही देखो—

सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु । ऋ. ५।६०।४

' उन वीरोंने साथ साथ अपने शरीरों द्वारा अपने महत्त्व-पूर्ण सामर्थ्य प्रकट किये हैं । ' और एक मंत्र देखो-

प्रबुध्या व ईरते महांसि । ऋ. ७।५६।१४

' आपके महत्त्वपूर्ण सामर्थ्य चारों ओर फैल रहे हैं । ' चारों ओर आपके महत्त्वपूर्ण सामर्थ्यका प्रकाश फैल रहा है।

महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम । अथर्व. ४।१।६

' पूर्व देवका धाम बडा है । ' महः यह पुराणपुरुषका धाम है ।

अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तम् । अथर्व ४।२५।५

' यक्ष्मादि रोगरहित महासामर्थ्य यहां धारण करके रखो । '

महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् । अथर्व. ७।२६।८

' व्यापक ईश्वरका महिमा विशाल अन्तरिक्षसे भी बडा है । ' यहां का ' महः ' शब्द महान् सामर्थ्यका द्योतक है ।

महः स्कंभस्य मिमानो अंगम् । अथर्व. १०।७।२

' आधारस्तंभ ईश्वरका अंग महान सामर्थ्यशाली है ।' यह महः पद ईश्वरके महत्त्वके लिये प्रयुक्त है ।

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महः । अथर्व. १८।२।१६

' तप करके जो स्वर्गको जाते हैं, तपसे जो कभी पराभूत नहीं हुए, वे तपसे महासामर्थ्य प्राप्त करते हैं । ' यहां तपसे महः का सामर्थ्य होता है ऐसा कहा है । इस तरह ' महः ' का उल्लेख वेदमंत्रोंमें हैं । प्रायः अनेक स्थानोंमें अपने अद्भुत आत्मसामर्थ्यका भाव इसमें है । अस्तित्व-ज्ञानपूर्वक कर्म-आत्मप्रकाशके पश्चात् यह महासामर्थ्य प्राप्त होता है जो प्राप्त करना चाहिये ।

जनः

अब ' महः ' के पश्चात् पांचवी व्याहृती ' जनः ' का विचार करते हैं–

' जनः '= का अर्थ है ' प्रजनन, उत्पन्न करनेकी शक्ति । प्रजनन करना, उगना, ऊपर आना, बढना, होना, जन्म लेना । मनुष्य मानवजाती । जाती, राष्ट्र । महः के ऊपरका स्थान ।

महः के पश्चात् जनः का स्थान है । इसमें प्रजननका कार्य मुख्य है । प्रजनन किस समय करना चाहिये इसका उत्तर यहां मिलता है—

१ प्रथम अपने अस्तित्वको सुस्थिर करो, (भूः)

२ पश्चात् ज्ञान प्राप्त करो और ज्ञानपूर्वक नियोजनसे उत्तम श्रेष्ठ कर्म करो, (भुवः)

३ इतना करनेसे आप अपना तेज चारों ओर फैला सकते हैं । (स्वः)

४ इस तरह अपना तेज फैलनेके पश्चात् महत्त्व प्राप्त होगा (महः)

५ इस तरहका महत्त्व प्राप्त होनेके पश्चात् ' जनः ' अर्थात् विवाह करके प्रजनन करना योग्य है । (जनः)

यह है प्रजनन करनेका समय । स्त्री पुरुषोंमें सुशिक्षासे पूर्वोक्त योग्यता सुस्थिर होनेपर वे परस्पर मिलकर प्रजनन

करें । तब उत्तमसे उत्तम प्रजा होगी और राष्ट्रकी काया पलट जायगी । श्रेष्ठ प्रजा निर्माण होगी । यही मनुष्यका कर्तव्य है ।

अब जनः के विषयमें उपनिषद् क्या कहते हैं सो देखिये--

स जनलोकं जयति । नृ. पू. ५।६
ॐ भूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यम् । महाना. ३
ॐ जनदिति व्याहृत्या । महाना. ३
जनश्च नारायणः, तपश्च नारायणः । ना. उ. १।५
जनोलोकस्तु हृदेश कण्ठे लोकस्तपस्ततः ।
ना. बिं. ४

' साधक तपसे जनलोक पर विजय प्राप्त करता है । भूभुर्व आदि सात व्याहृतियोंमें जनः व्याहृति पांचवी है । इसको ' जनः, जनस्, जनत् ' ऐसे भी नाम है । जनः से बोधित होनेवाला नारायण स्वरूप है । जनोलोक हृदयमें है और कण्ठमें तपोलोक है ।' इस तरह जनोलोकके विषयमें उपनिषदोंका कथन है । सब व्याहृतियां ईश्वर स्वरूप हैं और उनका स्थान मानवशरीरमें भी है ।

प्रजननकी इच्छा

प्रजननसे अपने समान जातीकी उत्पत्ति होती है । मनुष्यसे मनुष्य, कुत्तेसे कुत्ता और घोडेसे घोडा आदि । यह प्रजनन कर्म स्वाभाविक है । ' मैं एक हूं, मैं अनेक बनूं ' (एकोऽहं बहुस्यां) यह इच्छा हरएकमें होती है । पशुपक्षी तो स्वभाव धर्मसे नियममें रहते हैं और यथा ऋतु प्रजनन स्वभावधर्मसे करते हैं । ऋतुकाल को छोड-कर उनको ज्ञान भी नहीं होता कि यह नर है या नारी है । मनुष्यका वैसा नहीं है, मनुष्य मन और बुद्धिसे स्वतंत्र है, इसलिये वह अपनी स्वतंत्रताकी बुद्धिसे स्त्रीपुरुष भेदको जानता है और उसका सदुपयोग या दुरुपयोग करता है । वस्तुका अतियोग, अयोग, भ्रान्तियोग तथा सुयोग करके अपनी अवनति अथवा उन्नति कर सकता है । इसीलिये इसके लिये धर्मनियम लगे हैं । यह मनुष्य धर्म अधर्मको जाने और धर्मपालन द्वारा अपनी उन्नति निश्चित रूपसे करे ।

यहां इन व्याहृतियों द्वारा मनुष्य कब प्रजनन करे, और प्रजननके पूर्व किस अनुष्ठानको करे यह सब बताया है । देखिये-- (१ भूः) प्रथम अपना अस्तित्व सुस्थिर करने-का यत्न करे । अर्थात् शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धि आत्मा इनका स्वास्थ्य प्राप्त करे और समाजकी संघटना करके बलवान बने, निर्भय बने और सुरक्षित रहे । (२ भुवः) ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञानसे कौनसे शुभ कर्म व्यक्ति तथा समाजकी सुरक्षा और शान्तिके लिये आवश्यक हैं इसका ज्ञान प्राप्त करे और जो आवश्यक तथा करने योग्य शुभ कर्म हों, उनको यथायोग्य रीतिसे करे । (३ स्वः) जिससे अपना तेज फैल सकता है, अपने प्रकाशसे सबको मार्गदर्शन हो सकता, सबका आकर्षण हो सकता है ऐसा करे और स्वयं तेजका पुञ्ज बने । (४ महः) अपना महत्व, अपना सामर्थ्य बढावे और संकुचित भाव छोडकर विशाल भावका धारण करे । अर्थात् जनता नारायण का रूप है यह जानकर उसकी सेवा करके उसको आनन्द प्रसन्न करनेके लिये कर्म करे । ऐसा कभी न करे कि एक मानव विभागका हित करनेके लिये दूसरे विभागका नाश करे, पर ऐसा करे कि जिससे अविरोधसे सबकी उन्नति हो सके । इतना होनेके पश्चात् (५ जनः) प्रजननका समय आता है । इतना कर्तव्य किया तो मनुष्य उच्च अवस्थाको पहुंचता है । ऐसा श्रेष्ठ मनुष्य ऐसी श्रेष्ठ स्त्री से विवाह विधिसे संबद्ध होकर प्रजनन करे । इतना होनेतक शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धिको शुद्ध बलवान और संयमशील करें, उनको समर्थ करे, प्रगतिशील करे, श्रेष्ठ तथा प्रभावी बनावे । कभी हीनदीन दुर्बल दासभाव युक्त न बनावे । महः व्याहृतिने तो हीनदीन दुर्बल होनेका पूर्ण निषेध किया ही है ।

मनुष्यकी निसर्ग प्रवृत्तीको इस तरह परिशुद्ध करके उससे अच्छेसे अच्छे कार्य करवानेकी यह विधि है । इस-से मानव समाज उन्नत अवस्थाको प्राप्त होता जाता है और कभी नीचे नहीं गिरता । मानवसमाज यहां इस पृथ्वीपर उन्नत होता रहना चाहिये, वह पशुताको पहुंचना नहीं चाहिये । इस उन्नत अवस्थाको निश्चित रूपसे पहुंचनेका साधनमार्ग है । अब आगेकी छठी व्याहृति देखिये—

तपः

' तपः, तपस् ' = का अर्थ है तपना, कष्ट सहन करना । ' तप् '- धातुसे ' तपस् ' बनता है । इस ' तप् '

धातुका अर्थ ऐसा है-' प्रकाशना, तेजस्वी होना, तपना, उष्ण होना, उष्णता देना, दुःख सहना, तप करना, शरीरको ताप देना, जलना । '

इस ' तप् ' धातुसे ' तपः, तपस् ' ये पद बनते हैं इसलिये इनके अर्थ— ' उष्णता, गर्मी, दुःख, दुःखसहन करनेकी शक्ति, तप, धार्मिक तपस्या, ध्यान, नीतिधर्मका आचरण, व्रत, नियम ' ऐसे इसके अर्थ हैं ।

अच्छा शुभ कर्म करनेके समय कुछ न कुछ कष्ट तो होंगे ही, वे कष्ट आनन्दसे सहन करना और कितने भी कष्ट हुए तो भी उस शुभ कर्मको पूर्ण करना । यह तपसे होनेवाला है । यज्ञ करना हो, ज्ञान प्राप्त करना या ज्ञानका उपदेश करना, राष्ट्रका संरक्षण करना अथवा राष्ट्रकी सेवा करना, खेती करना, व्यापार व्यवहार करना आदि सभी कर्म करनेके समय कुछ न कुछ कष्ट अवश्य होंगे, उन कष्टोंके कारण वे व्यवहार न छोडना, परंतु कष्टोंको सहन करके इन सब उपयोगी कर्मोंको करनेका नाम तप है ।

आज कल तपका कुछ विपरीत सा अर्थ लोगोंने समझा है । चारों ओर चार अग्नि जलाकर सूर्यकी उष्णतामें दो तीन घण्टे बैठना, खीलोंके पुट्ठेपर बैठना, पानीमें खडा रहकर जप करना, धूपमें बैठना, एक पांवपर खडा रहना, अपने ही हाथको सुखाना, आदि अनेक प्रकारके तप होते हैं ऐसा लोक आजकल समझते हैं, पर यह बात सच नहीं है । ये तप नहीं हैं । ये तो तामसी आचरण हैं । इनको करना नहीं चाहिये । ये अज्ञानके कारण लोक कर रहे हैं । इनसे किसी तरहका लाभ होनेवाला नहीं है । इसलिये ऐसे तामसी क्रियाकलापको कोई न करे ।

मनुष्यको शीत उष्ण, सर्दी गर्मी, वृष्टी धूप, भोजन मिलना न मिलना आदि सहन करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये ।

हरएक कार्य करनेके समय मनुष्यको सर्दीमें या गर्मीमें जाना पडता है, धूपमें भ्रमण करना आवश्यक होता है, वृष्टीमें जानेका कार्य होता है । इनको सहन करनेकी शक्ति मनुष्यको अवश्य प्राप्त करनी चाहियेा यह शीत, उष्ण, सुख दुःख, हानि लाभ सहन करनेकी शक्ति जिस मनुष्यमें होती है वही मनुष्य कुछ विशेष कार्य कर सकता है । यही तप है । तपके विषयमें उपनिषदादि ग्रंथोंमें बहुत कहा है वह देखिये—

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा । केन ३३
तपो दानम् । छां. ३।१७।४
मेधया तपसाजनयत् पिता । बृ. १।५।१
तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च । तप इति तपो नित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः तद्धि तपः । तै. १।९।१
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति । तै. ३।२।१
यः पूर्वं तपसो जातम् । कठ ४।६
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति । श्वे. १।१५
तपसा प्राप्यते सत्त्वम् । मैत्री ४।३
तपसापहतपाप्मा । विद्यया तपसा चिन्तया वा उपलभ्यते ब्रह्म । मैत्री ४।४
प्रजापतिस्तप्तप्त्वा । मैत्री ६।६
तपसा चीयते ब्रह्म । मुण्ड. १।१।८
ज्ञानमयं तपः । मुण्ड. १।१।९
तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये । मुण्ड. १।२।११
कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् । मुण्ड. २।१।१०
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा । मु. ३।१।५
ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
महाना. ५।५
ऋतं तपः सत्यं तपः । ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः ।
महाना. ८।१
अर्चयन्ति तपः सत्यम् । महाना. १३।१
तप इति तपो नानशनात्परं, यद्धि परं तपस्तद्दुराधर्षम् । तस्मात्तपसि रमन्ते ।
महाना. २१।२
तपसा देवा देवतामग्र आयन्, तपसा ऋषयः सुवरविन्दन्, तपसा सपत्नान्प्रणुदामारातीः ।
महाना. २१।१
बलेन तपः, तपसा श्रद्धा । महाना. २३।१
तपोऽग्निः । महाना. २५।१
कठदेशे तपस्ततः । नाद. ४
संस्थाप्य हृदयं तपः । व्यास ५
तपश्चास्मि तपस्विषु । गी. ७।९
शारीरं तपः । वाङ्मयं तपः । तपो मानसं ।
गी. १७

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं, कार्यमेव तत्।
गी. १८।३

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।
गी. १८।५

शमो दमस्तपः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।
गी. १८।४२

द्रव्ययज्ञाः तपोयज्ञाः। गी ४।२८

स तपो लोकं जयति। नृ. पू. ५।६

'तप दान और कर्म यह सब उत्कर्षका आधार है। दान देना तप है। परमपिता परमेश्वरने मेधाबुद्धि और तपसे इस विश्वको बनाया। स्वाध्यायसे ज्ञान प्राप्त करना और प्राप्त ज्ञानका प्रवचन करके दूसरोंको देना और उनको ज्ञानी बनाना यह तप है। तपसे ब्रह्म जाना जाता है। सत्य और तपसे परमतत्त्वका दर्शन होता है। तपसे बल प्राप्त होता है। तपसे पाप दूर होता है। विद्या तप और मननसे ब्रह्मका ज्ञान मिलता है। प्रजापालक (ईश्वर) तप करके प्रजाकी पालना करता है। तपसे ब्रह्मका प्रकाश होता है। ज्ञानमय तप होता है। अरण्यमें जाकर तप और श्रद्धाकी उपासना करते हैं। कर्म, तप, ब्रह्म, श्रेष्ठ अमृत है। सत्यसे और तपसे आत्माके ज्ञानकी प्राप्ति होती है। प्रखर तपसे ऋत और सत्य प्रकट होता है। ऋत (सरल आचरण) तप है, सत्यका पालन करना तप है। इस तपसे ब्रह्मकी उपासना कर। तप और सत्यकी पूजा सब करते हैं। अनशन ही श्रेष्ठ तप है। इस तपमें सब रमते हैं। देवोंने तप करके ही देवत्वपन प्राप्त किया था। ऋषियोंने तपसे ही सुवर्ग प्राप्त किया था। वीरोंने तपसे ही शत्रुओंको भगाया था। तपसे बल प्राप्त होता है, और तप करनेसे श्रद्धा भी बढती है। तप अग्नि है, तपसे प्रकाश फैलता है। हृदयसे कण्ठतक तपोलोकका स्थान है। तपास्वियोंमें जो तप है वह ईश्वरकी विभूति है। शरीर वाणी और मनसे तप करना चाहिये। यज्ञ दान तप और कर्म छोडने नहीं चाहिये, यह सब अवश्य करना चाहिये। यज्ञ दान और तप करनेसे मनुष्य पवित्र होता है। शम, दम, तप, पवित्रता, अद्रोह, घमंड न करना ये गुण दैवीसंपत्तिके साथ उत्पन्न हुए पुरुषमें होते हैं। ये मनुष्यको देवत्व-दिव्यभाव-देनेवाले हैं।'

यह उपनिषदोंका तपके विषयका वर्णन अत्यंत स्पष्ट है। इससे शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करना आदि जो तप है, उसका महत्त्व प्रकट होता है। तपको ईश्वरका रूप कहा है, इससे और अधिक तपकी प्रशंसा क्या हो सकती है? अब वेद मंत्रोंमें तपका वर्णन है उसमेंसे थोडासा देखिये—

तपसा ये अनाधृष्याः
तपसा ये स्वर्ययुः। ऋ० १०।१५४।२

'तपसे जो विजयी हुवे, वे तपसे स्वर्गको प्राप्त हुए थे।'

त्वं तपः परितप्याजयः स्वः। ऋ० १०।१६७।१

'तूने तप तपकर अपना तेज बढाया है, स्वर्ग प्राप्त किया है।'

इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां
वाचोमतिं श्रुतमदत्तमग्रे।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीराः
यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम्॥ ऋ० ८।५९।६

'हे इन्द्र और वरुणो! प्रारंभमें ऋषियोंको तुमने जो बुद्धि वाणी, मननशक्ति और विद्या दी थी और उन ऋषियोंने अपनी पवित्र बुद्धिसे जो स्थान निर्माण किये थे, वे सब मैंने तपसे देखे हैं।' इस तरह तपसे विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।

पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः॥ २॥
तपसा युजा विजहि शत्रून्॥ ३॥ ऋ० १०।८३

'हे उत्साही वीर! तपसे बलवान् होकर हमारा संरक्षण कर, तपसे हमारे शत्रुओंको दूर कर।'

येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरमसृतस्य
नाभिम्। तेन गेष्म सुकृतस्य लोक धर्मस्य
व्रतेन तपसा यशस्यवः॥ अथर्व ४।११।६

'यश प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंने तप और व्रत करके अमृतमय स्वर्गलोकको प्राप्त किया वह सुकृतसे प्राप्त होनेवाला स्थान है।' इसमें तपसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ऐसा कहा है।

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति
शरव्यां न सामृषा। अनुहाय तपसा मन्युना
चोत दुरादव भिन्दन्त्येनम्॥ अथर्व ५।१८।९

' तीक्ष्ण शस्त्रवाले ज्ञानी वीर अपने तपके और उत्साहके बलसे जो बाण शत्रुपर छोडते हैं वे दूरसे ही शत्रुका नाश करते हैं । ' तपसे जो बल उत्पन्न होता है वह अपूर्व बल है ।

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूता-
त्पुरुषं यमाय । तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमे-
णानयैनं मेखलया सिनामि ॥ अथर्व ६।१३३।३

' मैं मृत्युके लिये समर्पित हुआ ब्रह्मचारी हूँ । मैं मृत्यु के लिये और एक पुरुष ले जाना चाहता हूं । उसको ज्ञान तप और श्रमसे तथा इस मेखलासे बांधता हूं । ' उसकी तैयारी करता हूं । मृत्युका अर्थ अज्ञानावस्थाको मारनेवाला गुरु है । ब्रह्मचारीकी उन्नति तप परिश्रम और ज्ञानसे होती है ।

तपका अर्थ सत्कर्म करनेके समय होनेवाले कष्टोंको आनंद से सहना है । सब श्रेष्ठ कर्म इस परिश्रमी वृत्तीसे होते हैं । जगत्के अन्दर ऐसा कोई प्राप्तव्य नहीं कि जो तपसे सिद्ध नहीं हो सकता । ईश्वरने भी प्रथम तप किया जिससे वह इस विश्वका निर्माण कर सका, यह तपका महत्त्व है । इस विषयमें जितना लिखा जाय उतना थोडा है । मनुष्यको प्रत्येक प्रकारका अभ्युदय और निश्रेयस तपसे ही प्राप्त हो सकता है । इस पृथ्वीपर सुखपूर्ण जीवन बनाना हो तो वह भी तपसे हो सकता है । विद्या ज्ञान बल ऐश्वर्य सामर्थ्य प्रभाव सुख आनन्द आदि सब कुछ तपसे प्राप्त होनेवाला है । अतः उन्नतिशील मनुष्योंको तपका आश्रय करना चाहिये ।

सत्यं

सातवी व्याहृति 'सत्यं' है । सत्य यह व्यवहारकी सचाई बताता है । मनुष्य सत्य व्यवहार करे, काया वाचा मनसे सत्यका पालन करे । सत्यके विषयमें उपनिषदोंने जो कहा है वह यह है—

आप्नोति प्रज्ञया सत्यं संकल्पम् । कौ० ३।२
तत्सत्यं स आत्मा । छां. ६।८।७
एतत्सत्यं ब्रह्मपुरम् । छां. ८।१।५
ब्रह्मणो नाम सत्यमिति । छां. ८।३।४
यो वै स धर्मः सत्यं वै तत् । बृ० १।४।१४
हृदयेन सत्यं जानाति, हृदये सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
बृ. ३।९।२३
सत्यं वद । धर्मं चर । तै. १।११।१
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । तै. २।१।१
यद्वेदेष्वभिहितं तत्सत्यम् । मैत्री ७।१०
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा । मुण्ड. ३।१।६
सत्यमेव जयते नानृतम् । मुण्ड ३।१।५
सत्येन पन्था विततो देवयानः । ,,
ऋषीणां चरितं सत्यम् । प्रश्न. २।८
सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णमद्वयम् । नृ. उ. ९
सत्यं प्राणो हंसः शास्ताऽच्युतो विष्णुर्नारायणः । मैत्रा. ७।७
सत्यं सर्वं प्रतिष्ठितं । महाना. १७।१

' प्रज्ञासे संकल्प सत्य होता है । आत्मा सत्य है यह ब्रह्म सत्य है । ब्रह्मका नाम सत्य है । जो धर्म है वही सत्य है । हृदयसे सत्य जाना जाता है । हृदयमें सत्य रहता है । सत्य बोल, धर्मका आचरण कर । सत्य ज्ञानमय अनन्त ब्रह्म है । जो वेदोंमें कहा है वह सत्य है । सत्यसे आत्मा प्राप्त होता है । सत्यका विजय होता है असत्यका नहीं । सत्यका मार्ग खुला हुआ है वही देवमार्ग है । ऋषियोंका चरित सत्य है । सत्य सूक्ष्म है और एक ही है । सत्यही प्राण हंस शासक अच्युत विष्णु नारायण है । सब सत्यमें आश्रय पाता है । '

इस तरह सत्यकी महिमा उपनिषदोंमें गाई है । यह सत्य मानवी व्यवहारमें आना चाहिये

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं ।
तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये
वा. यजु. ४०।१७, ईश. १५

' सुवर्णके पात्रसे सत्यका मुख ढंका है । हे पुष्ट होनेवाले ! यदि तुम्हें सत्य देखनेकी इच्छा है तो उसे दूर करो । '

मानवी व्यवहारमें यही हो रहा है । सुवर्ण प्रयोगसे सत्यका असत्य और असत्यका सत्य होता है । यह व्यवहार ऐसा ही चल रहा है । धन लोभ छोडनेसे ही

सत्यका संरक्षण हो सकता है । धनकोषमें न फंसनेसे मनुष्य सत्यको प्राप्त कर सकता है और सत्यही ज्ञान और सत्यही ब्रह्म है । आनंदमय ब्रह्म है इस लिये सत्यपालनसे अखंड आनंद प्राप्त हो सकता है ।

सप्तव्याहृतियोंका इतना महत्व है । ये सात गुप्त संकेतके शब्द हैं । वेदोंसे-वेदोंके मंत्रोंसे ऋषियोंने ये बाहर निकाले और अपनी सन्तानोंके अभ्युदय निश्रेयस सिद्धिके लिये उन्होंने ये सात शब्द दिये हैं । यदि मनुष्य सब वेद और उपनिषद पढ नहीं सकते, तो न पढें, यदि बहुत मंत्रोंका मनन नहीं कर सकते तो न करें, कम-से कम इन सात शब्दोंका तो अवश्य मनन करें, और इनके उपदेशका आचरण करें, तो निःसंदेह तारण होगा ।

ये सात शब्द " भूः-भुवः-स्वः-महः-जनः-तपः-सत्यं " ये हैं और इनका भाव सात शब्दोंमें ही देना हो तो— " अस्तित्व-ज्ञान-प्रकाश-महत्व-प्रजनन-सहनशक्ति—सत्यनिष्ठा " है । मनुष्य जीवनको पवित्र और आनंदमय बनानेका सामर्थ्य इन सात शब्दोंमें है । इन सात शब्दोंकी व्याख्या सात बडे बडे ग्रंथ लिखनेसे भी नहीं हो सकेगी, इतने गंभीर ये शब्द हैं । पाठक इनका जितना मनन करेंगे उतना अधिक उपयोगी दिव्य आचरण का बोध उनको हो सकता है । पाठक मनन करें और अपना जीवन कृतकृत्य बनावें !

व्यक्तिमें शान्ति ! राष्ट्रमें शान्ति !! विश्वमें शान्ति हो !!!

प्र श्न

१ गुप्त संकेतके शब्दोंका प्रयोजन क्या है ? किस समय गुप्त संकेतके शब्द प्रयुक्त होते हैं ?

२ व्याहृति शब्दका अर्थ क्या है ? व्याहृतियाँ कितनी हैं ?

३ ' भूः ' व्याहृति जिन मंत्रोंमें प्रयुक्त हुई है, उनमेंसे पांच मन्त्र अर्थके समेत लिखिये ।

४ अपना सामर्थ्यशाली अस्तित्व जिनसे सिद्ध होता है, वे सात मन्त्र अर्थके साथ लिखिये ।

५ ' भुवः ' का अर्थ लिखिये, इससे कौनसा बोध होता है ? यह व्याहृति जिन मंत्रोंमें है वैसे ५ मंत्र अर्थके समेत लिखिये ।

६ मृत्युक्षेत्र कौनसा और अमरक्षेत्र कौनसा है ?

७ ' स्वः ' व्याहृतिका अर्थ कहिये । ' स्वः ' व्याहृति जिनमें है ऐसे ७ मंत्र अर्थके साथ लिखिये ।

८ ' भूः भुवः स्वः ' इन तीनों व्याहृतियोंका परस्पर संबंध बताकर इनसे जो बोध मिलता है वह लिखिये ।

९ जिन मन्त्रोंमें ये तीनों व्याहृतियां हैं ऐसे ५ मन्त्र अर्थके साथ लिखिये ।

१० ' महः ' का अर्थ स्पष्ट कीजिये । ' जनः ' का भाव बताइये और प्रजननका कौनसा समय है यह प्रमाण देकर बताइये ।

११ ' तपः ' का व्यवहारमें कौनसा उपयोग है ? ' तपः ' जिन वचनोंमें आया है ऐसे ७ वचन अर्थके समेत लिखिये ।

१२ ' सत्य ' का महत्व बताइये । व्यवहारमें सत्य किससे दबाया जाता है और सत्यका दर्शन साधक किस रीतिसे करे ?

१३ सातों व्याहृतियोंने क्या बोध दिया है ?